अकाली लहर के बाद से, जब से सिक्ख पंथ की कमान हिन्दू विरोधी तत्वों के हाथ में आई है, तब से "हम हिन्दू नहीं", "सिक्ख एक बखरी कौम है" आदि नारे बुलंद हो गए हैं, सिक्ख पंथ सनातन धर्म से अलग हो गया, और खालिस्तानी सांप ने तो भाईचारे को पूर्णतः डस लिया है।

मैंने गुरुबाणी और सनातन धर्म ग्रंथों में तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाया कि गुरुबाणी तो सनातन धर्म ग्रंथों का संदेश ही देशी भाषा में देती है, कुछ नया सिद्धांत पेश नही करती है।

गुर नानक देव जी ने कोई नया सिद्धन्त संसार को नही दिया था, बस निर्गुण भक्ति का ही प्रचार किया था, निर्गुण भक्त मूर्ति पूजा नही करते, निर्गुण भक्ति गुरु नानक से बेहद पहले सनातन धर्म मे चली आ रही है।

इस छोटे से पीडीएफ में सारांश में गुरुबाणी का हर सिद्धान्त और उसके सनातनी मूल पर चर्चा की गई है, पूरा प्रयास किया गया है कि पीडीएफ लंबा न हो जाए, लेकिन फिर भी ये पीडीएफ पढ़कर आपको गुरुबाणी के सनातनी मूल की झलक मिल जाए, बस यही प्रयास है।

इस पीडीएफ में कोई गहन विश्लेषण नही किया गया है, बस एक दृष्टि डाली गई है।

काहन सिंह नाभे पर एक दृष्टि:-

हिन्दू द्वेषी सिक्ख अक्सर काहन सिंह नाभे की पुस्तक "हम हिन्दू नहीं" में उद्धरण दिया करते हैं।

अपनी पुस्तक की शुरुआत में ही काहन सिंह नाभा "कर्ता की और से जरूरी प्राथना" में लिखते हैं:-

"प्यारे पाठको, "हम हिन्दू नहीं" नामक पुस्तक को पढ़कर आपको केवल यह जानना योग्य है कि सिक्ख धर्म, हिन्दू आदि धर्मों से भिन्न है, और सिक्ख कौम अन्य कौमों की तरह एक अलग कौम है, पर यह कभी ख्याल नही होना चाहिए कि आप हिन्दू या अन्य धर्मियों से विरोध करें, अथवा देश भाइयों को अपना अंग ना मान कर जन्म भूमि से श्राप लें, बल्कि आपके लिए उचित है सतगुरु के इन वचनों पर भरोसा और अमल करते हुए कि:

एक पिता एकस के हम बारिक(बालक) (सोरठ म: 5, पन्ना 611)

सभ को मीत हम आपन कीना हम सभना के साजन (धनासरी म: 5, पन्ना 671)

सब के साथ पूर्ण प्रेम करें और हर समय सबका हित चाहें।"

नाभा जी का कहना है कि पुस्तक पढ़ने के बाद भी पाठक "हिंदुओं" का विरोध ना करे और उन्हें अपना अंग ही माने लेकिन समस्य यह है कि

"पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है उसे पढ़कर पाठकों के मन में हिंदुओं के प्रति "हीनभाव" ही पैदा होता है, उसे पढ़ने के बाद पाठक हिन्दू धर्म को हीन दृष्टि से देखना शुरू करता है सो ऐसी दृष्टि के साथ वो हिन्दूओं को स्वयं का अंग कैसे समझ सकता है? लेखक ने स्वयं तो अपनी पुस्तक में हिन्दू धर्म पर कालिख पोत दी है लेकिन पाठकों से आशा रखता है कि हिन्दू धर्म का विरोध ना करें, ये पाखंड है!"

यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि "काहन सिंह" जी द्वारा सदभावना का उपदेश देने के लिए गुरु अर्जन देव जी के जिन दो शब्दों का उपयोग किया गया है उसका मूल भी श्रुतियाँ(वेद) ही हैं

"एक पिता एकस के हम बारिक"

का मूल है

त्वं हि नः पिता (ऋग्वेद ८//९८//११)

अर्थात - हे ईश्वर, आप ही हमारे पिता हैं।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः |
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता || (भागवत गीता, 14.4)

अर्थात - हे कुन्तीपुत्र! तुम यह समझ लो कि समस्त प्रकार की जीव-योनियाँ इस भौतिक प्रकृति में जन्म द्वारा सम्भव हैं और मैं उनका बीज-प्रदाता पिता हूँ |

ये तो मात्र दो ही उदाहरण हैं! इसके अतिरिक्त भी सनातन धर्म ग्रंथों में जगह जगह हर प्राणी को ईश्वर की संतान बताया गया है, हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं, यह भाव श्रुतियों से ही निकला है।

और दूसरे शब्द

"सभ को मीत हम आपन कीना हम सभना के साजन"

का मूल है

दृते दृह मा मित्रस्य म चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (यजु० ३६.१८)

अर्थात - हे अविद्यान्धकार निवारक जगदीश्वर, दृढ़ता प्रदान कीजिए मुझे, मित्र की आँख से मुझे सब प्राणी देखें, मित्र की आँख से मैं सब प्राणियों को देखुँ, मित्र की आँख से हम सब एक-दूसरे को देखें।

विडंबना है कि नाभा जी अपनी पुस्तक के आरंभ में ही जिस शिक्षा का उपयोग करके सिक्खों को सबके प्रति सद्भाव रखने का उपदेश दे रहें हैं उस शिक्षा का "मूल" सनातन धर्म ही है, जिसे गुरुओं ने आगे बढ़ाया, लेकिन अपनी पुस्तक में उसी सनातन धर्म पर आघात करने का प्रयास कर रहे हैं।

पुस्तक के इसी भाग में वो अपना परिचय देते हुए लिखते हैं

"भारत सेवक
काहन सिंह"

स्वयं को "भारत सेवक" कहने से उनका क्या तात्पर्य है इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

अंग्रेज़ अधिकारी "मैक्स आर्थर मकौलिफ" ने छः खंडों में सिक्ख इतिहास लिखा है, जिसके "परिचय" में लिखता है:-

"कुछ समय पहले मैं एक युवक से मिला जो स्वयं को "गुरुओं" का "वंशज" बता रहा था, उसने मुझे बताया कि वो "हिन्दू" है! ऐसे युवक सिक्खों की पवित्र पुस्तकों को समझ नही सकते, इनके शिक्षकों और सलाहकारों का लक्ष्य उन्हें नमक हराम, निष्ठाहीन बनाना हो या न हो लेकिन ऐसे युवक सिक्ख धर्म से अनभिज्ञ है, वो सिक्ख धर्म की उन भविष्यवाणियों को नहीं जानते हैं जो अंग्रेजों के हक में की गई हैं"

इस परिचय में मकौलिफ और बहुत कुछ लिखता है कि कैसे गुरु गोबिंद सिंह जी की भविष्यवाणी है की "अंगेज़ी राज में चारों और खुशहाली आ जाएगी, अंग्रेज और सिक्ख सेना मिल कर चारों तरफ अंग्रेजी राज स्थापित कर देंगे" हालांकि उसने इस भविष्यवाणी का कोई स्रोत नहीं दिया है।

मकौलिफ लिखता है:-

"इस तरह की भविष्यवाणियों और "एकेश्वरवाद" और भोजन के मामले में अंधविश्वास और संयम के अभाव ने मिलकर सिक्खों को अंग्रेजी ताज की सबसे निष्ठावान, "स्वामीभक्त" और बहादुर कौमों में से एक बनाया है"

और आगे लिखता है:-

"स्वामी भक्ति सिक्खों की नसों में होती है" और "सिक्ख अपने स्वामी के लिए अंग अंग कटा देता है"

मकौलिफ का मानना था कि "सिक्खों" का स्वयं को हिन्दू समझना उन्हें अपने अंग्रेज स्वामियों के प्रति निष्ठाहीन बना देता है।

मकौलिफ ने इसी "परिचय" में "काहन सिंह नाभा" के प्रति भी आभार व्यक्त किया है "जो उसके साथ यूरोप गए और "लेखन" में उसकी सहायता की थी"

मकौलिफ के लिए सच्चा सिक्ख वही था जो अंग्रेज़ों के प्रति निष्ठावान हो और चूंकि काहन सिंह नाभा ने मकौलिफ की लेखन में सहायता की थी सो हम स्पष्ट तौर पर कह सकते हैं कि वह इस बात से पूरी तरह सहमत थे कि सच्चा सिक्ख वही है जो अंग्रेज़ स्वामियों के प्रति निष्ठावान हो!

मकौलिफ और काहन सिंह जी के बीच ये गठजोड़ स्पष्ट करता है कि काहन सिंह जी द्वारा स्वयं को "भारत सेवक" लिखने का भावार्थ भारत के अंग्रेज स्वामीयों के प्रति "निष्ठावान" होने से है, भारत का नहीं अपितु अंग्रेज़ अधिकारियों का "सेवक" होने से है।

आशा करता हूँ कि आप काहन सिंह नाभे की विचारधारा समझ गए होंगे, सिक्खों को हिंदुओं से अलग करना भी अंग्रेजों का एक षड्यंत्र था, और नाभा उस षडयंत्र का छोटा सा प्यादा था।

एकॐकार

"ॐ" में ब्रह्म के सारे नाम समा जाते हैं क्योंकि ॐ ब्रह्म का वाचक है बाकि सारे नाम गुणवाचक है, प्रोफेसर साहिब सिंह के अनुसार "कार" संस्कृत भाषा का एक प्रत्यय(Suffix) होता है, जिसका अर्थ होता है एक रस, जिसमें परिवर्तन नही आता है।

जब ॐ को एकाक्षर माना जाता है तब पाणिनि व्याकरण के "नियम" अनुसार "वर्ण" से होने वाला "कार" प्रत्यय जोड़कर ॐकार शब्द का प्रयोग किया जाता है।

ॐकार से भाव सदा रहने वाले ब्रह्म से है।

ऐसा नही है कि गुरु नानक देव जी ने ही पहली बार ॐ के साथ "कार" लगाकर उपयोग किया है:-

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च।।
(भगवद्गीता 9:17)

अर्थात - मैं ही इस जगत् का पिता, माता, धाता (धारण करने वाला) और पितामह हूँ, मैं वेद्य (जानने योग्य) वस्तु हूँ, पवित्र करने वाला, ॐकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ।।

"नादो वर्णस्त्वम् ॐकार"
(भागवत पुराण, 10:85:9)

अर्थात - आप ही नाद, वर्ण और ॐकार हैं।

ॐ से पहले "एक" लगाने का क्या भाव है?

१ॐकार अर्थात "एक ब्रह्म ही है दूसरा नही है"

गुरु नानक बार बार इस भाव को प्रकट करते हैं

"एकंकार अवर नाहि दूजा नानक एक समाई"

अर्थात - हे नानक! एक ब्रह्म ही है दूसरा कोई नही है वही सब जगह समाया हुआ है।

"एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति"

(ब्रह्मसूत्र)

अर्थात - एक ब्रह्म ही है दूसरा नही है।

गुरु नानक देव जी ने "एकं ब्रह्म" के स्थान "एक ॐकार" कर दिया है, कुछ अलग नहीं कहा है, न ही कुछ ऐसा कहा है जो सनातन धर्म में पहले से मौजूद नही था।

(नोट - सनातन धर्म के अनुसार हर कोई "ॐ" कहने का अधिकारी नही है, केवल द्विज ही ॐ का ध्यान कर सकते हैं, सो गुरु नानक ने ॐ से पहले एक लगा दिया, जिससे हर कोई इसका उच्चारण कर सकता है, इससे मर्यादा भी नही टूटी और भाव भी प्रकट हो गया है।)

पुनर्जन्म

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
(भगवद्गीता 2.22)

अर्थात - मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
(भगवद्गीता 18.15)

अर्थात - महात्मालोग मुझे(ईश्वर को प्राप्त करके दुःखालय और अशाश्वत पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते हैं।

जमि जमि मरै मरै फिरि जमै ॥
बहुतु सजाइ पइआ देसि लमै ॥
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहै पराणीआ ॥
(गु ग्रं सा 1019)

अर्थात - यह जीव बार जन्म लेता है और बार बार मरता है, इसे इस जन्म मरण के चक्कर द्वारा बेहद सजा मिलती है, जब तक मनुष्य परमात्मा को प्राप्त नही करता तब यह(जन्म मरण का) दुःख सहता रहता है।

84 लाख योनियाँ

जलज नव लक्षाणी,
स्थावर लक्ष विम्शति,
कृमयो रूद्र संख्यक:।
पक्षिणाम दश लक्षणं,
त्रिन्शल लक्षानी पशव:,

चतुर लक्षाणी मानव:।।
(78:5 पद्मपुराण)

अर्थात - जलचर 9 लाख हैं, स्थावर अर्थात पेड़-पौधे 20 लाख हैं, सरीसृप, कृमि अर्थात कीड़े-मकौड़े 11 लाख हैं, पक्षी/नभचर 10 लाख हैं, स्थलीय/थलचर 30 लाख और 4 लाख देवता दैत्य मानव आदि योनियां हैं, इस तरह कुल 84 लाख योनियाँ हैं।

लख चउरासीह मेदनी तिसना जलती करे पुकार
(गु ग्रं सा 1416)

अर्थात - हे भाई! चौरासी लाख जूनियों वाली ये धरती तृष्णा (की आग) में जल रही है और पुकार रही है।

जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछुताहि ॥
लख चउरासीह मेदनी घटै न वधै उताहि ॥
से जन उबरे जिन हरि भाइआ ॥
(गु ग्रं सा 936)

अर्थात - जो जीव (माया की ममता के बँधे हुए जगत में) आते हैं वह (इस ममता में फसे हुए यहाँ से) चले जाते हैं, बार-बार पैदा होते मरते हैं और दुखी होते हैं; (उनके लिए) ये चौरासी लाख जूनियों वाली सृष्टि रक्ती भर भी कम-ज्यादा नहीं होती (भाव, उन्हें ममता के कारण चौरासी लाख जूनियों में से गुजरना पड़ता है)। (उनमें से) बचते सिर्फ वे हैं जिनको प्रभु प्यारा लगता है।

गुरुभक्ति

सनातन धर्म कहता है:-

सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः |
एक एव महामंत्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ||
(गुरु गीता)

अर्थात - सात करोड़ महामंत्र विद्यमान हैं, वे सब चित्त को भ्रमित करनेवाले हैं, "गुरु" नाम का दो अक्षरवाला मंत्र एक ही महामंत्र है।

गुरुबाणी कहती है:-

"गुरू गुरु गुरू गुरु गुरू जपु प्रानीअहु"
(गु ग्रं सा, अंग १४००)

अर्थात - हे प्राणियों! नित्य 'गुरु' 'गुरु' जपो।

"जउ त सभ सुख इत उत तुम बंछवहु गुरू गुरु गुरू गुरु गुरू जपु प्रानीअहु ॥"
(अंग १४००)

अर्थात - अगर तुम परलोक के सारे सुख चाहते हो, तो हे प्राणियो! सदा गुरु गुरु जपो।1।13।

सनातन धर्म कहता है:-

गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम् |
सर्वतीर्थमयं देवि श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम् ||
(गुरु गीता)

अर्थात - गुरुभक्ति ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक हैं, हे देवी, गुरुदेव के चरणकमल सर्वतीर्थमय हैं।

गुरुबाणी कहती है:-

"गुरदेव तीरथु अम्रित सरोवरु गुर गिआन मजनु अपरमपरा"
(गु ग्रं सा, म ५, 262)

अर्थात - गुरु (सच्चा) तीर्थ है, अमृत का सरोवर है, गुरु के ज्ञान (-जल) का स्नान (सारे तीर्थों के स्नानों से) बहुत श्रेष्ठ है।

सनातन धर्म कहता है:-

गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादत:।
(गुरुगीता)

ब्रह्म(ईश्वर) गुरु के मुख अर्थात गुरुवाणी में स्थित है और उनके प्रसाद से प्राप्त होता है।

गुरुबाणी कहती है:-

"बाणी गुरु गुरु है बाणी विच बाणी अम्रित सारे"

अर्थात - बाणी गुरु है और गुरु बाणी है, गुरु की बाणी में सब तरहं के अमृत हैं।

सनातन धर्म कहता है:-

"गुरु साक्षात परब्रह्म"

अर्थात - गुरु साक्षात परब्रह्म है।

गुरुबाणी कहती है:-

"गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई"
(अंग ५५२, म ४)

अर्थात - हे भाई! गुरु परमात्मा है परमात्मा गुरु है दोनों में कोई फर्क नहीं है।

इसके इलावा भी गुरुबाणी में गुरुशब्द की महिमा, गुरु की महिमा का बहुत अधिक बखान किया गया है।

नाम जप

नाम जप के विषय में गुरुबाणी कहती है:-

तीरथ सिम्रिति पुंन दान किछु लाहा मिलै दिहाड़ी ॥
नानक नामु मिलै वडिआई मेका घड़ी सम्हाली ॥
(गु ग्रं सा, महला 1, अंग 1191)

अर्थात - तीर्थों के स्नान, स्मृतियों के पाठ और दान-पुण्य आदि का जो कोई लाभ है तो वह थोड़ी सी मजदूरी के रूप में ही है, हे नानक! अगर कोई मनुष्य परमात्मा का नाम एक घड़ी मात्र ही याद करे तो उसको आदर मिलता है।

खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेसु चहु वरना कउ साझा ॥
गुरमुखि नामु जपै उधरै सो कलि महि घटि घटि नानक माझा ॥
(गु ग्रं सा, महला 5, अंग 748)

अर्थात - हे भाई! (परमात्मा का नाम स्मरण करने का) उपदेश खत्री-ब्राहमण-वैश-शूद्र चारों वर्णों के लोगों के लिए एक जैसा ही है, जो मनुष्य गुरु के बताए हुए रास्ते पर चल के प्रभु का नाम जपता है वह जगत में विकारों से बच निकलता है, हे नानक! उस मनुष्य को परमात्मा हर शरीर में बसा हुआ दिखाई देता है।

सनातन धर्म भी यही कहता है:-

सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षणानि व्रतानि च।
तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च।।
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण)

अर्थात - सारे यज्ञ, लाखों व्रत, सर्वतीर्थ - स्नान, तप, अनेकों उपवास, हजारों वेद-पाठ, पृथ्वी की सैकड़ों प्रदक्षिणा कृष्ण नाम जपके सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हो सकतीं है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्।।
(श्रीमद्भागवत महापुराण)

अर्थात - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और अंत्यजादि जहाँ कहीं भी "विष्णु" भगवान के नाम का बारंबार कीर्तन करते रहते हैं वे भी समस्त पापों से मुक्त होकर सनातन परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

तीर्थ स्नान

तीर्थ स्नान के विषय में गुरुबाणी क्या कहती है:-

मनि मैलै सभु किछु मैला तनि धोतै मनु हछा न होइ ॥
(गु ग्रं सा, म ३, अंग 558)

अर्थात - हे भाई! अगर मनुष्य का मन (विकारों की) मैल से भरा रहे तो सब कुछ मैला ही रहता है, शरीर को तीर्थ स्नान करवाने से मन पवित्र नहीं हो सकता है।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार ॥
(गु ग्रं सा, म - १, अंग १)

अर्थात - अगर में लाखों बार (भी) (स्नान आदि से शरीर की) स्वच्छता रखूँ, (तो भी इस तरह) स्वच्छता रखने से (मन की) स्वच्छता नहीं हो सकती है।

सनातन धर्म भी यही कहता है:-

मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे ।
तथा मलिनचित्तानां गङ्गापि कीकटाधिका ॥
(देवी भागवत)

अर्थात - हे राजन! मन, वचन तथा कर्म से "शुद्ध" प्राणियों के लिए पद पद पर तीर्थ हैं, किंतु दूषित मन वाले प्राणियों के लिए "गंगा" भी "मगध" से अधिक "अपवित्र" हो जाती है।

भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्तातो न शुध्यति ॥
(देवी भागवत)

अर्थात - दूषित भावनाओं वाला मनुष्य तीर्थों में करोड़ों स्नान करके भी पवित्र नही हो सकता है।

समभाव

गुरुबाणी जगह जगह "समभाव" का उपदेश देती है, सुख दुःख में, मान अपमान में, मित्र शत्रु के साथ और निंदा प्रशंसा में समान रहने का उपदेश देती है।

सुख दुख सम करि जाणीअहि सबदि भेदि सुखु होइ ॥
(गु ग्रं सा, म १, 57)

अर्थात - सुख और दुख को एक समान जानना चाहिए, शब्द द्वारा भेद को समझकर सुख मिलता है।

दुख सुख दोऊ सम करि जानै बुरा भला संसार॥
(गु ग्रं सा, म १, 1256)

अर्थात - वह मनुष्य सुख दुख को एक-समान जानता है, भले बुरे संसार को समान मानता है।

उसतति निंदिआ नाहि जिहि कंचन लोह समानि ॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि ॥

(गु ग्रं सा, म ९, 1427)

अर्थात - जिन्हें कोई निंदा - प्रशंसा नही व्याप्ति है, जिनके लिए लोहा - सोना एक समान ही हैं, उन्हें मुक्त समझना चाहिए।

हरखु सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि ॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि ॥
(गु ग्रं सा, म ९, 1427)

अर्थात - जिन्हें कोई सुख दुख नही है और जिसके लिए जिसको शत्रु और मित्र एक समान हैं, उन्हें मुक्त समझना चाहिए।

यह तो मात्र कुछ ही उदाहरण हैं, इनके अतिरिक्त भी गुरुबाणी जगह जगह समभाव रहने का उपदेश करती है, लेकिन ये उपदेश मूलतः आया कहाँ से है?

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।
(भगवद्गीता, 14:24)

अर्थात - जो स्वस्थ (स्वरूप में स्थित), सुख-दु:ख में समान रहता है तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समदृष्टि रखता है; ऐसा वीर पुरुष प्रिय और अप्रिय को तथा निन्दा और आत्मस्तुति को तुल्य समझता है।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।
(भगवद्गीता, 14:25)

अर्थात - जो मान और अपमान में सम है; शत्रु और मित्र के पक्ष में भी सम है, ऐसा सर्वारम्भ परित्यागी पुरुष गुणातीत(मुक्त) कहा जाता है।।

ईश्वरीय नियम

अब यह तो कोई बालक भी बता सकता है कि गुरु नानक देव जी अपने इस शब्द में "तैत्तरीयोपनिषद" की ही व्याख्या सरल शब्दों में काव्यमय ढंग से देशी भाषा में कर रहे हैं:-

भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति।
(तैत्तरीयोपनिषद, वल्ली २, अष्टम अनुवाक)

अर्थात - इसी के भय से पवन चलता है, (इसी के) भय से सूर्य उदय होता है, इसी के भय से अग्नि और इंद्र और पाँचवाँ मृत्यु, (ये सब)अपना अपना कार्य करने में प्रवृत्त हो रहे हैं, इस प्रकार यह श्लोक है।

भै विचि पवणु वहै सदवाउ ॥ भै विचि चलहि लख दरीआउ ॥
भै विचि अगनि कढै वेगारि ॥ भै विचि धरती दबी भारि ॥
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि ॥ भै विचि राजा धरम दुआरु ॥

भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ॥ कोह करोड़ी चलत न अंतु ॥
भै विचि सिध बुध सुर नाथ ॥ भै विचि आडाणे आकास ॥
भै विचि जोध महाबल सूर ॥ भै विचि आवहि जावहि पूर ॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ॥ नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु ॥
(गु ग्रं सा, म १, अंग 464)

अर्थात - हवा सदा ही ईश्वर के डर में चल रही है। लाखों नदियां भी भय में बह रही हैं। आग जो सेवा कर रही है, ये भी रब के भय में ही है, सारी धरती ईश्वर के डर के कारण ही भार तले दबी हुई है। रब के भय में इन्द्र राजा सिर के बल घूम रहा है (भाव, बादल उसकी ही रजा में उड़ रहे हैं)। धर्मराज का दरबार भी रब के डर में है। सूर्य भी और चंद्रमा भी रब के हुक्म में हैं, करोड़ों कोस चलते (भी) हुए रास्ते का अंत नहीं आता। सिद्ध, बुद्ध, देवते और नाथ - सारे ही रब के भय में हैं। ये ऊपर तना हुआ आकाश (जो दिखते हैं, ये भी) भय में ही है। बड़े'बड़े बलशाली योद्धे और शूरवीर सब रब के भय में हैं। पुरों के पुर जीव जो जगत में पैदा होते हैं और मरते हैं, सब भय में है। सारे ही जीवों के माथे पर भउ-रूप लेख लिखा हुआ है, भाव, प्रभु का नियम ही ऐसा है कि सारे उस के भय में हैं। हे नानक! केवल एक सच्चा निरंकार ही भय-रहित है।

काल

"काल की गति सूक्ष्म है जो सबको चरण के नीचे धरे है, सदाशिव और विष्णु को जिसने खेलने का गेंद किया है और वह सबका भोजन करती है"
- योगवाशिष्ठ, उपशमन प्रकरण, जनकविचार

काल पाइ ब्रहमा बपु धरा ॥
काल पाइ शिवजू अवतरा ॥
काल पाइ करि बिशन प्रकाशा ॥
सकल काल का कीया तमाशा ॥
- गुरु गोबिंद सिंह जी

अर्थात - काल में ही ब्रहमा शरीर धारण करते हैं, काल में ही शिव जी का अवतार होता है, काल मे ही "विष्णु" का प्रकाश होता है, काल का ही सारा खेल है।

नीति वचन

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् ,
रुक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचुमुषतीमुग्ररुपां
धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत॥
(विदुर नीति)

अर्थात - इस जगत में रूखी बातें सीधी मर्मस्थान, हड्डियों तथा हृदय पर जाकर प्रहार करती है और प्राणों को टीसती रहती है, इसलिए धर्मप्रिय व्यक्ति को ऐसी बातों को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए।

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ॥
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥

फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ॥
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ॥
(गु ग्रं सा, सलोकु मः १, अंग 473)

अर्थात - हे नानक! जो मनुष्य रूखे वचन बोलता रहे, तो उसका तन और मन दोनों रूखे हो जाते हैं, रूखा बोलने वाला लोगों में रूखा ही "प्रसिद्ध" हो जाता है और लोग भी उसे रूखे वचन से सदा याद करते हैं, रूखा मनुष्य ईश्वर के दरबार में रद्द हो जाता है और उसे "धिक्कार" ही मिलती हैं, रूखे मनुष्य को मूर्ख कहना चाहिए, प्रेम से वंचित को जूतों की मार पड़ती है।

किसी की निंदा नही करनी चाहिए और मूर्ख से बहस नहीं करनी चाहिए, यही नीति है:-

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यः गां चरन्तीं निवारय ॥
(कौटिलीयानि नीतिसूत्राणि)

अर्थात - यदि आप एक ही कार्य से सारे जगत् को वश में करना चाहते हैं तो दूसरों की बुराई के अनाज पर चरने वाली गाय रुपी अपनी जीभ पर लगाम लगा दें ।

मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः
(कौटिलीयानि नीतिसूत्राणि)

अर्थात - मूर्ख से विवाद करना कर्तव्य नही है।

गुरुबाणी किस नीति का उपदेश करती है:-

मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ॥
मूरखै नालि न लुझीऐ ॥
(गु ग्रं सा, म - १, 473)

अर्थात - (उपदेश) पढ़ कर यह समझ लें कि किसी की भी बुराई नहीं करनी चाहिए और मूर्ख के साथ उलझना नहीं चाहिए।

ईश्वरीय प्रेम

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
(विष्णु पुराण 1:20:19)

अर्थात - हे प्रभु ! अविवेकी पुरुषों की विषयों में जैसी प्रीति होती है, वैसी ही प्रीति आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदय में हो और वह कभी दूर न हो।

भक्तराज प्रह्लाद का भाव है कि

जिस तरह सांसारिक मनुष्य की प्रीति इन्द्रिय तृप्ति के विषयों संभोग, धन, परिवार आदि में होती है, उसी तरह मेरे "हृदय" में आपके लिए प्रीति हो, ऐसी कृपा करें, क्योंकि आप ही की "कृपा" से आपके प्रति अखंड प्रेम प्राप्त कर पाना संभव है

भक्त नामदेव जी ने इसी भाव का बहुत सुंदर शब्दों में वर्णन किया है जोकि गुरु ग्रंथ साहिब जी के अंग(पेज) 1164 पर अंकित है:-

भैरउ नामदेउ जीउ घरु २ ੴकार सतिगुर प्रसादि

जैसी भूखे प्रीति अनाज ॥
त्रिखावंत जल सेती काज ॥
जैसी मूड़ कुट्मब पराइण ॥
ऐसी नामे प्रीति नराइण ॥१॥

अर्थात - जैसी भूखे मनुष्य को अन्न से प्रीति होती है, जैसे प्यासे को जल की आवश्यक्ता होती है, जैसे कोई मूर्ख अपने परिवार पर आश्रित हो जाता है, ऐसी ही प्रीति नामे को "नारायण" से है।1।

नामे प्रीति नाराइण लागी ॥
सहज सुभाइ भइओ बैरागी ॥१॥ रहाउ॥

अर्थात - नामे की प्रीति नारायण के साथ लग गई है, इस प्रीति से वह सहज स्वभाव ही वैरागी हो है।।1। रहाउ।

जैसी पर पुरखा रत नारी ॥
लोभी नरु धन का हितकारी ॥
कामी पुरख कामनी पिआरी ॥
ऐसी नामे प्रीति मुरारी ॥२॥

अर्थात - जैसे कोई नारी पर पुरुष में आसक्त हो जाती है, जैसे किसी लोभी मनुष्य को धन ही हितकर प्रतीत होता है, जैसे किसी कामी को सुंदरी ही प्रिय है, ऐसी ही प्रीति नामे की "मुरारी" के साथ है।।2।

साई प्रीति जि आपे लाए ॥
गुर परसादी दुबिधा जाए ॥
कबहु न तूटसि रहिआ समाइ ॥
नामे चितु लाइआ सचि नाइ ॥३॥

अर्थात - प्रीति वही है जो प्रभु स्वयं कृपा करके हृदय में पैदा करे, गुरु कृपा से संशय मिट जाते हैं, उसका प्रभु से प्रेम कभी टूटता नहीं, नामे का चित सच्चे नाम मे लग गया है।3।

जैसी प्रीति बारिक अरु माता ॥
ऐसा हरि सेती मनु राता ॥
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ॥
गोबिदु बसै हमारै चीति ॥४॥

अर्थात - जैसी माता - पुत्र में प्रीति होती है, वैसे मेरा मन हरि भक्ति में रंगा हुआ है, नामदेव विनती करता है: मेरी प्रीति लग गई है, गोबिंद मेरे चित में बसते हैं।4।

जैसा पूजे तैसा होए

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।। (भगवद्गीता, 9:25)

अर्थात - देवताओं के पूजक देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितर "पूजक" पितरों को जाते हैं, भूतों का "यजन" करने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मुझे पूजने वाले भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।।

भैरउ भूत सीतला धावै ॥
खर बाहनु उहु छारु उडावै ॥१॥
हउ तउ एकु रमईआ लैहउ ॥
आन देव बदलावनि दैहउ ॥१॥ रहाउ॥
सिव सिव करते जो नरु धिआवै ॥
बरद चढे डउरू ढमकावै ॥२॥
महा माई की पूजा करै ॥
नर सै नारि होइ अउतरै ॥३॥
तू कहीअत ही आदि भवानी ॥
मुकति की बरीआ कहा छपानी ॥४॥
गुरमति राम नाम गहु मीता ॥
प्रणवै नामा इउ कहै गीता ॥५॥२॥६॥
(गु ग्रं सा, अंग ८७४, भक्त नामदेव)

अर्थात - जो मनुष्य भैरव की ओर जाता है (भाव, जो भैरव की आराधना करता है) वह (ज्यादा से ज्यादा भैरव जैसा ही) भूत बन जाता है। जो सीतला को आराधता है वह (सीतला की ही तरह) गधे की सवारी करता है और (गधे के साथ) राख ही उड़ाता है।1।
(हे पण्डित!) मैं तो एक सुंदर राम का नाम ही लूँगा, (तुम्हारे) बाकी सारे देवताओं को उस नाम के बदले में दे दूँगा, (अर्थात, प्रभु-नाम के मुकाबले में मुझे तुम्हारे किसी भी देवते की आवश्यक्ता नहीं है)।1। रहाउ।
जो मनुष्य शिव का नाम जपता है वह (ज्यादा से ज्यादा जो कुछ हासिल कर सकता है वह ये है कि शिव का रूप ले के, शिव की सवारी) बैल के ऊपर चढ़ता है और (शिव की ही तरह) डमरू बजाता है।2।
जो मनुष्य पार्वती की पूजा करता है वह मनुष्य नर से नारी हो के जन्म लेता है (क्योंकि पूजा करने वाला अपने पूज्य का रूप ही बन सकता है)।3।
हे भवानी! तू सबका आदि कहलवाती है, पर (अपने भक्तों को) मुक्ति देने के समय तू भी, पता नहीं कहाँ छुपी रहती है (भाव, मुक्ति भवानी के पास भी नहीं है)।4।
सो, नामदेव विनती करता है: हे मित्र (पण्डित!) सतिगुरु की शिक्षा ले के परमात्मा के नाम की ओट ले, (तुम्हारी धर्म-पुस्तक) गीता भी यही उपदेश देती है।5।2।6।

इस शब्द में भक्त नामदेव जी भगवद्गीता के उपदेश को आगे बढ़ा रहे हैं!

लेकिन एक चालाकी की और आपका ध्यान इंगित करवाता हूँ:-

"सिक्ख" स्कॉलर्स की चालाकी देखिए कि वो ऐसे शब्दों के अर्थ करते समय ब्रैकेट्स( ) में सनातन धर्म के विरुद्ध कुछ न कुछ लिख देते हैं!!

जैसे इसी शब्द को लीजिए,,,नामदेव जी कहते हैं कि

"गीता भी यही उपदेश देती है" लेकिन "मूल विहीन" सिक्ख ब्रैकेट्स में लिख देंगे कि "(तुम्हारी धर्मपुस्तक) गीता भी यही कहती है"

"अन्य सारे देवताओं को उस नाम के बदले में दे दूँगा" को लिख देंगे "(तुम्हारे) अन्य सारे देवताओं को उस "नाम" के बदले में दे दूँगा"

इस शब्द के अनुवाद में (ज्यादा से ज्यादा भैरव जैसा),(ज्यादा से ज्यादा जो कुछ हासिल कर सकता है वह ये है कि शिव का रूप ले के, शिव की सवारी) आदि भी इसी चालाकी के उदाहरण हैं।

आप अगर गुरुबाणी का अनुवाद पढ़ने बैठेंगे तो पाएंगे कि लगभग हर शब्द का अनुवाद ऐसे ही किया गया, () में कुछ बातें लिख दी जाती हैं जो मूल "शब्द" में होती ही नही हैं।

(हे पांडे) (तेरा) (तेरे) (तुम्हारे) (मेरे लिए) आदि कुछ "शब्द" हैं जो ब्रैकेट्स() में सबसे ज्यादा उपयोग किए जाते हैं लेकिन मूल "शब्दों" में होते ही नही हैं, कभी कभी तो बहुत लंबा "वाक्य" () ब्रेकेट्स में लिख दिया जाता है, जैसे कि इसी शब्द में जगह जगह लिख दिए गए हैं।

स्वामी रामानंद शब्द

भक्त कबीर जी, भक्त रविदास जी, भक्त धन्ना जी आदि के गुरु स्वामी "रामानंद" जी एक महान संत थे, जिन्होंने पूरे देशभर में पैदल यात्रा कर करके समाज के हर "वर्ग" को "विष्णु" भक्ति से जोड़ा और "सनातन" धर्म का "प्रचार" किया।

स्वामी रामानंद जी जैसे महान सनातनी संत को भी सिक्ख बंधु गैर सनातनी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं क्योंकि उनका एक "शब्द" गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित है:-

रामानंद जी घरु १ १ॐकार सतिगुर प्रसादि ॥

कत जाईऐ रे घर लागो रंगु ॥ मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ॥१॥ रहाउ॥ एक दिवस मन भई उमंग ॥ घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ॥ पूजन चाली ब्रहम ठाइ ॥ सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि ॥१॥ जहा जाईऐ तह जल पखान ॥ तू पूरि रहिओ है सभ समान ॥ बेद पुरान सभ देखे जोइ ॥ ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ ॥२॥ सतिगुर मै बलिहारी तोर ॥ जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ॥ रामानंद सुआमी रमत ब्रहम ॥ गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥३॥१॥

अर्थात

हे भाई! और कहाँ जाएं? (अब) हृदय-घर में ही मौज बन गई है; मेरा मन अब डोलता नहीं, स्थिर हो गया है।1। रहाउ।

एक दिन मेरे मन में भी यह चाहत पैदा हुई थी, मैंने चंदन घिसा के इत्र व अन्य कई सुगंधियाँ ले लीं, और मैं मन्दिर में पूजा करने चल पड़ी। पर अब तो मुझे वह परमात्मा (जिसको मैं मन्दिर में रहता समझती थी) मेरे गुरु ने मेरे मन में ही बसता दिखा दिया है।1।

(तीर्थों पर जाऐं चाहे मन्दिरों में जाऐं) जहाँ भी जाऐं वहाँ पानी है अथवा पत्थर हैं। हे प्रभु! तू तो हर जगह एक समान भरपूर (व्यापक) है, वेद-पुराण आदि धर्म-पुस्तकें भी खोज के देख ली हैं। सो तीर्थों पर मन्दिरों में तब ही जाने की जरूरत है अगर परमात्मा मेरे मन में ना बसता हो।2।

हे सतिगुरु! मैं तुझसे सदके जाता हूँ, जिसने मेरी सर्व समस्याएं और भ्रम दूर कर दिए हैं। रामानंद का मालिक प्रभु हर जगह मौजूद है (और, गुरु के माध्यम से मिलता है, क्योंकि) गुरु का शब्द करोड़ों (किए हुए बुरे) कर्मों का नाश कर देता है।3।1।

सिक्ख बंधु इस शब्द से निष्कर्ष निकालते हैं कि:

""स्वामी रामानंद जी ने मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा और वेदों पुराणों का विरोध किया है, सो रामानंद जी सनातनी नहीं थे बल्कि वो सनातन धर्म के विरोधी थे""

शब्द पर पुनः दृष्टि डालते हैं:-

कत जाईऐ रे घर लागो रंगु ॥
मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ॥१॥ रहाउ॥

स्वामी रामानंद जी की इन पंक्तियों के अंत मे गुरु अर्जन देव जी ने "रहाउ" लगाया है अर्थात गुरुजी अनुसार यह पंक्तियां पूरे शब्द का सारांश हैं।

वैसे रहाउ का संबंध गायन से भी है लेकिन "परम्परागत" तो यही माना जाता है कि जिस "पंक्ति" के अंत में रहाउ हो वह पंक्ति पूरे शब्द का सार होती है।

कत जाईऐ रे घर लागो रंगु ॥
मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ॥१॥ रहाउ॥

रामानंद जी की इन पंक्तियों का भावार्थ है

"मेरे "हृदय" पर "हरि" भक्ति का रंग लग गया है जिससे चित्त वृत्तियां रुक गई हैं और मन "शांत" हो गया है, अब कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है"

नारद जी कहते हैं

"यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति"

अर्थात - हरि रंग लग जाने पर मनुष्य "उन्मत्त" हो जाता है, स्तब्ध (शांत) हो जाता है, आत्माराम(आत्मा में ही वास करने वाला) बन जाता है।

भक्ति प्राप्त हो जाने पर मनुष्य का मन शांत हो जाता है, फिर वह आत्मा(आनंद) में ही वास करता है, उसे(आनंद की खोज में) कहीं और जाने की आवश्यकता नही रह जाती है।

देवर्षि नारद और स्वामी रामानंद दोनों एक ही बात कह रहे हैं, रंचमात्र भी भेद नही है।

अब हम अगली पंक्तियों पर दृष्टि डालते हैं:-

एक दिवस मन भई उमंग ॥
घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ॥
पूजन चाली ब्रहम ठाइ ॥
सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि ॥१॥

अर्थात - एक दिन मेरे मन में भी यह चाहत पैदा हुई थी, मैंने चंदन घिसा के इत्र व अन्य कई सुगंधियाँ ले लीं, और मैं मन्दिर में पूजा करने चल पड़ी, पर अब तो मुझे वह परमात्मा (जिसको मैं मन्दिर में रहता समझती थी) मेरे गुरु ने मेरे मन में ही बसता दिखा दिया है।1।

स्वामी जी पिछली पंक्तियों में अपनी अवस्था बता चुके हैं कि उनके हृदय पर हरि रंग चढ़ चुका है, और इन पंक्तियों में भी स्प्ष्ट कर रहे हैं कि गुरु के उपदेश से हृदय में ही ब्रह्म के दर्शन हो गए हैं।

आदि शंकराचार्य जी ने भी लिख दिया कि

निर्लेपस्यकुतोगन्धं पुष्पंनिर्वसनस्य च।
निर्गन्धस्यकुतोधूपं स्वप्रकाशस्यदीपकम्।।

अर्थात

"निर्लेप" ईश्वर को "सुगंधि" कहाँ और "वासना" से रहित को "पुष्प" कहाँ? "गंधि" से रहित को "धूप" कहाँ और स्वयं "प्रकाश" को "दीपक" कहाँ?

और

देहः देवालयः प्रोक्तः

अर्थात - शरीर ही ईश्वर का मंदिर कहा गया है।

सनातन धर्म ग्रंथ कहते हैं

"मुनीनां हृदि दैवतम्"

अर्थात - "मुनि" हृदय में विराजमान ईश्वर की उपासना करते हैं।

भगवद्गीता कहती है

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देश्ऽर्जुन तिष्ठति।

(भगवद्गीता गीता 18:61)

अर्थात - हे अर्जुन, ईश्वर प्रत्येक जीव के हृदयदेश में निवास करता है।

और इसका ज्ञान गुरु की शरण में जाकर होता है

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।
(भगवद्गीता गीता 4.34)

अर्थात - उस (ज्ञान) को (गुरु के समीप जाकर) साष्टांग प्रणिपात, प्रश्न तथा सेवा करके जानो; ये तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।।

अगर आदि शंकराचार्य जी के शब्द गुरु ग्रंथ साहिब जी मे दर्ज होते तो उन्हें भी "सनातन" विरोधी सिद्ध करने का "प्रयास" किया जाना था।

अब आखरी दो चौपाइयों पर दृष्टि डालते हैं:-

जहा जाईऐ तह जल पखान ॥
तू पूरि रहिओ है सभ समान ॥
बेद पुरान सभ देखे जोइ ॥
ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ ॥२॥

अर्थात - (तीर्थों पर जाएें चाहे मन्दिरों में जाएें) जहाँ भी जाएें वहाँ पानी है अथवा पत्थर हैं। हे प्रभु! तू तो हर जगह एक समान भरपूर (व्यापक) है, वेद-पुराण आदि धर्म-पुस्तकें भी खोज के देख ली हैं। सो तीर्थों पर मन्दिरों में तब ही जाने की जरूरत है अगर परमात्मा मेरे मन में ना बसता हो।2।

स्वामी रामानंद जी इस चौपाई में दो बातें जोर देकर कह रहे हैं की उनकी जल और पाषाण में तीर्थ बुद्धि नही है और ईश्वर हर जगह समान रूप दे व्यापक है।

यस्यात्मबुद्धि: कुणपे त्रिधातुके
स्वधी: कलत्रादिषु भौम इज्यधी: ।
यत्तीर्थबुद्धि: सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखर: ॥ १३ ॥
(भागवत पुराण, 10:84:13)

अर्थात

"जो त्रिधातुओं से निर्मित हुए शव समान इस शरीर में "आत्मबुद्धि" रखता है, स्त्री आदि में "स्वबुद्धि" रखता है, पाषाण में "पूज्यबुद्धि" रखता है और जल में "तीर्थबुद्धि" रखता है, वह कदापि बुद्धिमान नही है, वास्तव में वह गाएं या गधा ही है।"

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

(भगवद्गीता 13:28)

अर्थात - जो पुरुष समस्त नश्वर भूतों में अनश्वर परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही (वास्तव में) देखता है।।

इन दो श्लोकों को ध्यान में रखते हुए चौपाई को दुवारा पढ़िए:-

जहा जाईऐ तह जल पखान ॥
तू पूरि रहिओ है सभ समान ॥
बेद पुरान सभ देखे जोइ ॥
ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ ॥२॥

स्वामी रामानंद वही कह रहे हैं जो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है, रंचमात्र भी भेद नही है, स्वामी जी तो शब्द भी हूबहू वही उपयोग कर रहे हैं जो श्रीकृष्ण ने किए हैं।

मूर्तिमान और मूर्ति के भेद को दर्शाया गया है।

स्वामी जी स्वयं कह रहे हैं

बेद पुरान सभ देखे जोइ ॥

की वेद पुराण मैंने देख लिए हैं वो भी यही कहते हैं।

अब अगली चौपाई पर दृष्टि डालते हैं

सतिगुर मै बलिहारी तोर ॥
जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ॥
रामानंद सुआमी रमत ब्रहम ॥
गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥३॥१॥

अर्थात

"हे सतिगुरु! मैं तुझसे सदके जाता हूँ, जिसने मेरी सर्व समस्याएं और भ्रम दूर कर दिए हैं। रामानंद का मालिक प्रभु हर जगह मौजूद है (और, गुरु के माध्यम से मिलता है, क्योंकि) गुरु का शब्द करोड़ों (किए हुए बुरे) कर्मों का नाश कर देता है।3।1।"

स्वामी जी यहाँ गुरु की स्तुति कर रहें हैं, सनातन धर्म मे गुरु की कितनी महिमा है ये बताना आवश्यक नही है, गुरु बिना ज्ञान होता ही नही है, सो इस चौपाई में भी सनातन धर्म का कोई विरोध नही है।

स्वामी रामानंद सनातन धर्म का विरोध नही कर रहे हैं बल्कि सनातन धर्म ग्रंथों में जो कहा गया है, उसी का देशी भाषा में रूपांतरण कर रहे हैं, उसी "पराभक्ति" की व्याख्या कर रहे हैं जिसके बारे में आदि शंकर ने लिखा है, और जिसका "वर्णन" सनातन धर्म ग्रंथो मे विस्तार से किया गया है।

अल्लाह कितनी बार**?** राम कृष्ण मिथ्या अवतार**?**

अगर गुरुओं के हरि राम आदि हिंदुओं के हरि राम आदि से अलग हैं तो उन्होंने हरि राम ही क्यों उपयोग किया?

अब इस प्रश्न पर सिक्ख बंधुओं का कुतर्क है कि

"गुरु ग्रंथ साहिब में तो अल्लाह का नाम भी आता है"

लेकिन जो बात सिक्ख बंधु नही बताते वो यह कि

"गुरु ग्रंथ साहिब जी मे तो 1430 अंग(पेज) हैं और उनपर संभवतः 46 बार "अल्लाह" शब्द अंकित है

जबकि "हरि" शब्द 8344 बार, "राम" 2533 बार, "गोबिंद" 475 बार अंकित है"

अगर "अल्लाह" का नाम भी सात आठ हज़ार बार अंकित होता तब यह तर्क दिया भी जा सकता था कि देखो अल्लाह का नाम भी अंकित है लेकिन सच्चाई ये है कि अल्लाह का नाम तो दूरबीन से खोजना पड़ता है, जबकि "सनातनी" नाम पन्ने पन्ने पर अंकित हैं।

और दूसरा यह कि

46 बार "अल्लाह" शब्द "अंकित" होने से ये बात तो कहीं से "सिद्ध" नही होती कि "हरि", "राम" आदि नाम सनातनी नही हैं, अगर गुरु नानक देव जी के राम को निर्गुण राम माना जाए तब भी राम,हरि आदि नाम सनातनी ही रहेंगे,,,

और निर्गुण राम की "उपासना" गुरु नानक देव जी से हज़ारों वर्ष पूर्व से सनातन धर्म मे होती आई है,,,,

बहुत से सिक्ख बंधु कहते हैं

"हम स्वीकार करते हैं कि ये नाम सनातनी है लेकिन ये नाम निर्गुण के लिए उपयोग किए गए हैं, दशरथ पुत्र राम और देवकी पुत्र कृष्ण तो मिथ्या हैं"

मैं कहता हूँ ठीक है

"तुमने ये तो माना कि ये नाम सनातनी हैं"

और रही बात राम कृष्ण के मिथ्या होने की तो बात ऐसी है कि गुरुबानी कहती है

कर धरे चक्र बैकुंठ ते आए गज हसती के प्रान उधारीअले ॥
दुहसासन की सभा द्रोपती अम्बर लेत उबारीअले ॥१॥

अर्थात - हाथों में चक्र पकड़ के बैकुंठ से (ही) आया था और हाथी के प्राण तूने ही बचाए थे। हे साँवले प्रभु! "दुःशासन" की "सभा" में जब "द्रोपदी" के "वस्त्र" उतारे जा रहे थे तब उसकी इज्जत भी तूने ही बचाई थी।

गोतम नारि अहलिआ तारी पावन केतक तारीअले ॥
ऐसा अधमु अजाति नामदेउ तउ सरनागति आईअले ॥२॥२॥

अर्थात - हे बीठल! गौतम ऋषि की पत्नी "अहिल्या" को तूने ही मुक्त किया था; हे माधव! तूने (अनेक पतितों को) पवित्र किया और उनका उद्धार किया है, मैं नामदेव (भी) एक बहुत ही नीच हूँ और नीच जाति वाला हूँ, मैं तेरी शरण आया हूँ।

अब ये शब्द "भगवान" राम और भगवान "कृष्ण" से संबंधित है द्रोपदी की लाज भगवान कृष्ण के रूप में बचाई और अहिल्या का भगवान राम के रूप में उद्धार किया।

गुरुबाणी में यही एक नहीं ऐसे बहुत से शब्द मौजूद हैं,,,

अब अगर तुम दशरथ पुत्र राम और वासुदेव कृष्ण को मिथ्या कहो तो "गुरुबाणी" में मौजूद ऐसे बहुत से "शब्दों" को मिथ्या मानना पड़ेगा,,,,,

और गुरुबाणी स्वयं कहती है

धुर की बाणी आई ॥
तिनि सगली चिंत मिटाई।।

अर्थात - हे संत जनो! परमात्मा की महिमा की वाणी जिस मनुष्य के अंदर आ बसी, उसने अपनी सारी चिन्ता दूर कर ली।

लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रहम बीचार ॥

अर्थात - जगत समझता है कि सतिगुरु का शब्द (कोई साधारण सा) गीत ही है, पर ये तो परमात्मा के गुणों की विचार है (जो अहंकार से जीते-जी मुक्ति दिलाता है)।

अगर बाणी ब्रहम विचार है तो गुरुबानी में मौजूद राम - कृष्ण से "संबंधित" किस्से मिथ्या कैसे हो सकते हैं? अगर इन किस्सों को "मिथ्या" कहा जाए तो तब तो यह "ब्रहम" विचार ना होकर मिथ्या विचार ही है।

जब आपके अनुसार गुरुबाणी में मौजूद ईश्वर महिमा के किस्से ही मिथ्या हैं, तो इसका सीधा अर्थ है की उसकी महिमा मिथ्या है, मिथ्या महिमा को "हृदय" में बसाने से "चिंता" दूर नही होती बढ़ती ही है।

सो अगर गुरुबाणी में मौजूद राम कृष्ण के किस्सों को मिथ्या माना जाए तो यह मानना पड़ेगा कि पूरी की पूरी "गुरुबाणी" ही मिथ्या है, यह मानना उचित नहीं, सो भगवान राम - कृष्ण की इतिहासिकता को स्वीकारना ही आपके लिए उचित है।

भक्त नामदेव जी ने कहा -

"हिन्दू अन्ना तुर्क काना"

अर्थात - हिन्दू अंधा है और मुस्लिम काना है।

लेकिन जब मुस्लिम बादशाह ने उन्हें सनातन धर्म त्याग कर इस्लाम या मृत्यु से किसी एक का चयन करने के लिए कहा और उनकी माँ ने भी रोते हुए उन्हें राम राम छोड़ कर खुदा खुदा करने के लिए कहा,,तो नामदेव जी ने क्या उत्तर दिया स्वयं नामदेव जी ही लिखते हैं:-

रुदनु करै नामे की माइ ॥
छोडि रामु की न भजहि खुदाइ ॥

अर्थात - (मेरी)नामे की माँ रोने लगी (और कहने लगी- हे पुत्र!) तू राम छोड़ के खुदा-खुदा क्यों नहीं कहने लग जाता?

न हउ तेरा पूंगड़ा न तू मेरी माइ ॥
पिंडु पड़ै तउ हरि गुन गाइ ॥

अर्थात - (मैंने उत्तर दिया-) ना मैं तेरा पुत्र हूँ, ना तू मेरी माँ है; अगर मेरा शरीर भी "नाश" हो जाए, तो भी नामा हरि के गुण गाता रहेगा।

इसी शब्द में कहते हैं

पाखंतन बाज बजाईला
गरुड़ चढे गोबिंद आइला
अपने भगतन पर की प्रतिपाल
गरुड़ चढे आए गोपाल

अर्थात - (उसी समय) पंखों के फड़कने से ऊँची आवाज हुई, विष्णु भगवान गरुड़ पर चढ़ कर आ गए, उन्होंने अपने भक्त की रक्षा कर ली और गरूड़ पर सवार होकर आ गए!

बादशाह की शर्त थी कि या मृत गाएं को जीवित करो या फिर इस्लाम और मृत्यु से एक को चुनो, नामदेव जी कहते हैं विष्णु भगवान "गरुड़" पर "सवार" होकर आ गए, और उन्होंने गाएं जीवित कर दी, पूरा शब्द गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है।

संत नामदेव जी हिंदुओं को अंधा कहकर सनातन धर्म का विरोध नहीं बल्कि हिंदुओं को शुद्ध सनातन धर्म का पालन करने की शिक्षा दे रहे हैं।

पूरा शब्द इस प्रकार है

हिन्दू अन्ना तुर्क काना
दोहां ते ज्ञानी सियाना

अर्थात - हिन्दू अंधा है और मुस्लिम काना है, इन दोनों से ज्ञानी बुद्धिमान है।

कबीर जी का एक शब्द है:**-**

राजन कउनु तुमारै आवै ॥

ऐसो भाउ बिदर को देखिओ ओहु गरीबु मोहि भावै ॥१॥ रहाउ॥

अर्थात - हे राजन! तेरे घर कौन आए? मैंने विदुर का ऐसा भाव देखा है कि वह गरीब मुझे भाता है।1।

हसती देखि भरम ते भूला स्री भगवानु न जानिआ ॥
तुमरो दूधु बिदर को पान्हो अम्रितु करि मै मानिआ ॥१॥

अर्थात - तूँ हाथी (आदि) देख कर भ्रम के कारण (ईश्वर को)भूल गया, श्री भगवान को नहीं पहचाना! एक तरफ तेरा दूध है, दूसरी तरफ विदुर का पानी है; ये पानी मुझे अमृत दिखता है।1।

खीर समानि सागु मै पाइआ गुन गावत रैनि बिहानी ॥
कबीर को ठाकुरु अनद बिनोदी जाति न काहू की मानी ॥२॥९॥

अर्थात - खीर जैसा(मीठा) साग मैंने पाया, रात गुण गाते हुए बीती है, कबीर का ठाकुर आनंद विनोदी है, वह किसी की ऊँची नीची जाति की परवाह नहीं करता।2।9।

भगवान किसी की भी जाति रूप रंग भाषा आदि नही देखते, उन्हें तो केवल भाव ही प्रिय है, भक्त कबीर जी यही बताने के लिए उस कथा का उदाहरण देते हैं-

जब भगवान कृष्ण दुर्योधन के महल को छोड़ कर महात्मा विदुर जी के घर चले गए थे।

कबीर जी का यह शब्द गुरु ग्रंथ साहिब के अंग(पेज) 1105 पर अंकित है।

सिक्ख बंधुओं के अनुसार इस "शब्द" में कबीर जी भगवान श्री कृष्ण की नहीं निरंकार की स्तुति कर रहे हैं, अजीब - अजीब तर्क देते हैं, लेकिन सत्य तो छुपता नही है।

भक्तराज प्रह्लाद जी की कथा

गुरु ग्रंथ साहिब जी के अंग(पेज) 1154 पर गुरु अमरदास जी द्वारा उच्चारित की गई भक्तराज प्रह्लाद जी की कथा इस प्रकार है:

भैरउ महला ३ घरु २ ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

तिनि करतै इकु चलतु उपाइआ ॥
अनहद बाणी सबदु सुणाइआ ॥
मनमुखि भूले गुरमुखि बुझाइआ ॥
कारणु करता करदा आइआ ॥१॥

अर्थात - हे भाई! (यह जगत) उस करतार ने एक तमाशा रचा हुआ है, (उसने स्वयं ही गुरु के द्वारा जीवों को) एक-रस वलवले वाला गुर-शब्द सुनाया है। अपने मन के पीछे चलने वाले मनुष्य (सही जीवन के राह से) टूटे रहते हैं, गुरु के सन्मुख रहने वालों को (परमात्मा आत्मिक जीवन की) सूझ बख्श देता है। यह सबब करतार (सदा से ही) बनाता आ रहा है।1।

गुर का सबदु मेरै अंतरि धिआनु ॥

हउ कबहु न छोडउ हरि का नामु ॥१॥ रहाउ॥

अर्थात - हे भाई! (मेरे) गुरु का शब्द मेरे अंदर बस रहा है, मेरी तवज्जो का निशाना बन चुका है। (गुरु के शब्द द्वारा प्राप्त किया हुआ) परमात्मा का नाम मैं कभी नहीं छोड़ूंगा।1। रहाउ।

पिता प्रहलादु पड़ण पठाइआ ॥
लै पाटी पाधे कै आइआ ॥
नाम बिना नह पड़उ अचार ॥
मेरी पटीआ लिखि देहु गोबिंद मुरारि ॥२॥

अर्थात - हे भाई! (देखो, प्रहलाद के) पिता ने प्रहलाद को पढ़ने के लिए (पाठशाला में) भेजा। प्रहलाद तख़्ती लेकर अध्यापक (पांधे) के पास पहुँचा। (अध्यापक तो कुछ और ही पढ़ाने लगे, पर प्रहलाद ने कहा-) मैं परमात्मा के नाम के बिना और कोई कार्य-व्यवहार नहीं पढ़ूँगा, आप मेरी पट्टी पर परमात्मा का नाम ही लिख के दो।2।

पुत्र प्रहिलाद सिउ कहिआ माइ ॥
परविरति न पड़हु रही समझाइ ॥
निरभउ दाता हरि जीउ मेरै नालि ॥
जे हरि छोडउ तउ कुलि लागै गालि ॥३॥

अर्थात - हे भाई! माँ ने (अपने) पुत्र प्रहलाद को कहा- तू जिस (हरि के नाम) में व्यस्त हुआ पड़ा है, वह ना पढ़ (बहुत) समझाती रही (पर, प्रहलाद ने उक्तर दिया-) किसी भी से ना डरने वाला परमात्मा (सदा) मेरे साथ है, अगर मैं परमात्मा (का नाम) छोड़ दूँ, तो सारी कुल को ही दाग़ लगेगा।3।

प्रहलादि सभि चाटड़े विगारे ॥
हमारा कहिआ न सुणै आपणे कारज सवारे ॥
सभ नगरी महि भगति द्रिड़ाई ॥
दुसट सभा का किछु न वसाई ॥४॥

अर्थात - हे भाई! (अध्यापकों ने सोचा कि) प्रहलाद ने (तो) सारे ही विद्यार्थी बिगाड़ दिए हैं, हमारा कहा ये सुनता ही नहीं, अपने काम ठीक किए जा रहा है, सारे शहर में इसने परमात्मा की भक्ति लोगों के दिलों में दृढ़ करवा दी है। हे भाई! दुष्टों की जुण्डली का प्रहलाद पर कोई जोर नहीं चल रहा।4।

संडै मरकै कीई पूकार ॥
सभे दैत रहे झख मारि ॥
भगत जना की पति राखै सोई ॥
कीते कै कहिऐ किआ होई ॥५॥

अर्थात - हे भाई! (आखिर) संडे ने और अमरक ने (हर्णाकष्यप के पास) जाकर शिकायत की। सारे दैत्य अपना जोर लगा के थक गए (पर उनकी पेश ना पड़ी)। हे भाई! अपने भक्तों की इज्जत वह स्वयं ही रखता है। उसके पैदा किए हुए किसी (दुखदाई) का जोर नहीं चल सकता।5।

किरत संजोगी दैति राजु चलाइआ ॥
हरि न बूझै तिनि आपि भुलाइआ ॥
पुत्र प्रहलाद सिउ वादु रचाइआ ॥

अंधा न बूझै कालु नेड़ै आइआ ॥६॥

अर्थात - हे भाई! पिछले किए कर्मों के संजोग से दैत्य (हर्णाकश्यप) ने राज चला लिया, (राज के मद में) वह परमात्मा को (कुछ भी) नहीं था समझता (पर उसके भी क्या वश?) उस कर्तार ने (स्वयं ही) उसको गलत रास्ते पर डाल रखा था। (सो) उसने (अपने) पुत्र प्रहलाद के साथ झगड़ा खड़ा कर लिया। (राज के मद में) अंधा हुआ (हर्णाकश्यप यह) नहीं था समझता (कि उसकी) मौत नजदीक आ गई है।6।

प्रहलादु कोठे विचि राखिआ बारि दीआ ताला ॥
निरभउ बालकु मूलि न डरई मेरै अंतरि गुर गोपाला ॥
कीता होवै सरीकी करै अनहोदा नाउ धराइआ ॥
जो धुरि लिखिआ सुो आइ पहुता जन सिउ वादु रचाइआ ॥७॥

अर्थात - हे भाई! (हर्णाकश्यप ने) प्रहलाद को कोठे में बंद करवा दिया, और दरवाजे पर ताला लगवा दिया। पर निडर बालक बिल्कुल नहीं था डरता, (वह कहता था-) मेरा गुरु मेरा परमात्मा मेरे हृदय में बसता है। हे भाई! परमात्मा का पैदा किया हुआ जो मनुष्य परमात्मा के साथ बराबरी करने लग जाता है, वह (अपनी) समर्थता से बड़ा अपना नाम रखवा लेता है। (हर्णाकश्यप ने) प्रभु के भक्त से झगड़ा छेड़ लिया। धुर दरगाह से जो होनी लिखी थी, उसका समय आ पहुँचा।7।

पिता प्रहलाद सिउ गुरज उठाई ॥
कहां तुम्हारा जगदीस गुसाई ॥
जगजीवनु दाता अंति सखाई ॥
जह देखा तह रहिआ समाई ॥८॥

अर्थात - सो, हे भाई! पिता (हर्णाकश्यप) ने प्रहलाद पर गदा उठा ली, (और कहने लगा- बता,) कहाँ है तेरा जगदीश? कहाँ है तेरा गोसाई? (जो तुझे अब बचाए)। (प्रहलाद ने उक्तर दिया-) जगत का आसरा दातार प्रभु ही आखिर (हरेक जीव का मददगार बनता है।) मैं तो जिधर देखता हूँ, वह उधर ही मौजूद है।8।

थम्हु उपाड़ि हरि आपु दिखाइआ ॥
अहंकारी दैतु मारि पचाइआ ॥
भगता मनि आनंदु वजी वधाई ॥
अपने सेवक कउ दे वडिआई ॥९॥

अर्थात - हे भाई! (उस वक्त) खम्भा फाड़ के परमात्मा ने अपने आप को प्रकट कर दिया, (राज के मद में) मस्त हुए (हर्णाकश्यप) दैत्य का मार डाला। हे भाई! भगतों के मन में (सदा) आनंद (सदा) चढ़दीकला बनी रहती है। (भक्त जानते हैं कि) परमात्मा अपने भक्तों को (लोक-परलोक में) इज्जत देता है।9।

जमणु मरणा मोहु उपाइआ ॥
आवणु जाणा करतै लिखि पाइआ ॥
प्रहलाद कै कारजि हरि आपु दिखाइआ ॥
भगता का बोलु आगै आइआ ॥१०॥

अर्थात - हे भाई! कर्तार ने स्वयं ही जनम-मरण का चक्कर बनाया है, स्वयं ही जीवों के अंदर माया का मोह पैदा किया हुआ है। (जगत में) आना (जगत से) चले जाना-ये लेख कर्तार ने स्वयं ही हरेक जीव के माथे पर लिख रखा

है। (हर्णाकश्यप के भी क्या वश?) प्रहलाद का काम संवारने के लिए परमात्मा ने अपने आप को (नरसिंह रूप में) प्रकट किया। (इस तरह) भगतों का वचन पूरा हो गया (कि 'अपुने सेवक कउ दे बड़ाई')।10।

देव कुली लखिमी कउ करहि जैकारु ॥
माता नरसिंघ का रूपु निवारु ॥
लखिमी भउ करै न साकै जाइ ॥
प्रहलादु जनु चरणी लागा आइ ॥११॥

अर्थात - हे भाई! सारे देवताओं ने लक्ष्मी की उपमा की (और कहा-) हे माता! (प्रेरणा कर के कह: हे प्रभु!) नरसिंह वाला रूपदूर कर। (पर) लक्ष्मी भी डरती थी, वह भी (नरसिंह के नजदीक) नहीं जा सकती थी। (परमात्मा का) भक्त प्रहलाद (नरसिंह के) चरणों में आ लगा।11।

यह तो पूर्णतः स्पष्ट है कि हिंदुओं का हरि ही गुरुओं का हरि है लेकिन मूल विहीन सिक्खों का कहना है कि हमारा हरि अलग है।

मूल विहीन सिक्ख उत्तर दें कि देवता माता लक्ष्मी जी के पास क्यों गए? इसलिए न क्यूंकि वो विष्णु जी की पत्नी हैं? या फिर आप लोगों का कहना है कि यहाँ लक्ष्मी अकाल पुरुष की शक्ति को कहा गया है?

तो पहला प्रश्न तो यही आता है कि "क्या अकाल पुरुष की शक्ति और अकाल पुरुष अलग अलग हैं?"

अगर आप लोग कहते हो कि लक्ष्मी अकाल पुरुष की शक्ति को कहा गया है तब तो और भी दिक्कत है क्योंकि शब्द में दर्ज है कि माता लक्ष्मी "भय" के कारण नरसिंह(विष्णु) के पास नहीं गई, तुम्हारे अनुसार अकाल पुरुष की शक्ति भयभीत हो जाती है तो तुम्हारा अकाल पुरुष "निर्भय" कैसे है? गुरुबाणी तो उसे निर्भय बताती है?

"प्रथम भगौती सिमरके" कहकर सबसे पहले उस शक्ति का स्मरण करते हो जो "निर्भय" ही नही है?

सत्य तो यह है कि आप अपने झूठ को सच सिद्ध करने के चक्कर में स्वयं ही गुरुबाणी को काटते जाते हो, सो सत्य स्वीकार करना ही उचित है।

अकाल पुरुष

""सनातन"" का अर्थ होता है "शाश्वत" अर्थात जो सदा बना रहे, शाश्वत वही हो सकता है जो "काल" से परे है क्योंकि जो काल के "अधीन" होगा उसका आदि भी होगा और अंत भी होगा वो शाश्वत नही सकता, सो सनातन का एक अर्थ "अकाल" भी है अर्थात जो "काल" से परे है, इसी कारण "सनातन धर्म" को "अकाल धर्म" भी कहते हैं।

"सनातन पुरुष" का ही नाम "अकाल पुरुष" है, कोई "भेद" नही है, सनातन धर्म का "उपदेश" ही देशी भाषा में काव्यमय ढंग से गुरुओं द्वारा आगे बढ़ाया गया है, कुछ नया "उपदेश" नही दिया गया है।

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुरुबाणी का हर सिद्धांत सनातन धर्म ग्रंथों से निकला है, कुछ नया सिद्धांत नही है, इसके इलावा गुरुबाणी तुर्या अवस्था(चौथा पद), कुंडलिनी शक्ति, कर्मफल सिद्धान्त, सतसंगत आदि की भी चर्चा करती है, उनका मूल भी सनातन धर्म ही है, पीडीएफ बड़ा न हो, इसलिए उनकी चर्चा नही की है।

यह कोई समानता नही है, समानता तो तब कहा जाता, यदि एक दो सिद्धांत मेल खाते, लेकिन नहीं, यहाँ हर सिद्धांत मेल खा रहा है।

यह समानता नही बल्कि एकत्व है।

:- दीक्षांत वशिष्ठ